135/RL



कुलार्णव-तन्त्र

[प्रथम उल्लास]



(भाषा टीका सहित)



RAMAKRISHNA ASHRAMA
LIBRARY, SRINAGAR
ACC NO. 633

प्रकाशक

विज्ञान मन्दिर, ऋषिकेश (उ०प्र०)

मूल्य]  [~~आठ~~ बारह आने

294.5514 KUL T, 1

SRI RAMAKRISHNA ASHRAM
LIBRARY
Shivalya, Karan Nagar,
SRINAGAR.

Class No. 294.5513(4)
Book No. KUL T, 1
Accession No. 633

कुलार्णव-तन्त्र

प्रथम उल्लास

श्री देव्युवाच—

भगवन् देव देवेश ! पंचकृत्य विधायक !
सर्वज्ञ ! भक्ति सुलभ ! शरणागत वत्सल ॥१॥
कुलेश ! परमेशान ! करुणामृत वारिधे !
असारे घोर संसारे सर्व दुःख मलीमसाः ॥२॥
नाना विध शरीरस्था अनन्ता जीवराशयः ।
जायन्ते च म्रियन्ते च तेषामन्तो न विद्यते ॥३॥
घोर दुःखातुरादेव न सुखी जायते क्वचित् ।
केनोपायेन देवेश ! मुच्यते वद मे प्रभो ! ॥४॥

सांसारिक प्राणियों को नाना प्रकार के दुःख, क्लेश उठा

हुए देखकर, एक दिन दयार्द्र हृदया भगवती पार्वती ने भगवान् शंकर से पूछा—

हे देवेश ! जगत्-स्रष्टा, सर्वज्ञ, भक्तिसुलभ, शरणागत-परित्राता, करुणा-सागर, कुलेश, परमेश भगवन ! इस निस्सार अति दारुण संसार में विविध देहधारी असंख्य प्राणी जन्मते और मरते रहते हैं। उनके इस आवागमन का कोई अन्त नहीं है। एक भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसको पूर्णरूप से सुखी कहा जाय। हे सुरेश्वर ! कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे प्राणी इन दुःखों से छुटकारा पा सकें।

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यस्य श्रवण मात्रेण संशयान्मुच्यते नरः ।।५।।

भगवान् शंकर बोले—

हे देवि ! सुनो, जो तुम पूछ रही हो; उसे मैं कहूँगा, जिसके सुनने मात्र से मनुष्य संशय से छुटकारा पा सकता है।

अस्ति देवि ! परब्रह्म स्वरूपी निष्कलः शिवः ।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलाशयः ।।६।।
अयं ज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः ।
निर्गुणः सच्चिदानन्द स्तदंशा जीव संज्ञकाः ।।७।।
असत्य विद्योपहता यथाग्नौ विस्फुलिंगकाः ।
सर्वाद्युपाधि भिन्नास्ते कर्मादिभि रनादिभिः ।।८।।

सुख दु:ख प्रदैः स्वीयैः पुराय पापै र्नियन्त्रिताः ।
तत्जाति युतं देहं आयुर्भोगं च कर्मजम् ॥९॥
प्रति जन्म प्रपद्यन्ते तेषामन्तो न विद्यते ।
सूक्ष्म लिंग शरीरं तदा मोक्षादक्षयं प्रिये ॥१०॥
स्थावराः कृमयश्चाब्जाः पक्षिणः पशवो नराः ।
धार्मिका स्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥११॥
चतुर्विध शरीराणि धृत्वा धृत्वा सहस्रशः ।
सुकृतान्मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्ष माप्नुयात् ॥१२॥

हे देवि ! पर ब्रह्म स्वरूप, निष्कल, सर्व कल्याणकारी सर्वज्ञ, निर्मल, आदि-अन्त-विहीन, निर्विकार, परात्पर, निर्गुण, सत्-चित्-आनन्द रूप; सर्वकर्ता, परमदिव्य एक शक्ति है और ये सब जीव-जन्तु उसी के अंश हैं।

ये प्राणी असत्य और अविद्या से ढके होने के कारण अपने स्वरूप को उसी प्रकार नहीं जानते जैसे राख से ढकी हुई अग्नि की चिनगारी जानी नहीं जाती । सब प्रकार की उपाधियों से रहित होने पर भी अपने इस अज्ञानवश, अच्छे-बुरे कर्मों को करते हुए, नाना प्रकार की योनियों में पड़कर, तदनुसार शरीर धारण करते हैं और आयु तथा अन्य भोगों को भोगते रहते हैं। उनके इस जन्म-मरण का क्रम चलता ही रहता है, इसका कभी अन्त नहीं होता।

जीवका सूक्ष्म कारण शरीर मोक्ष पर्यन्त नष्ट नहीं होता जिसके कारण वह स्थावर, कृमि (कीड़े-मकोड़े), अब्ज (जल में उत्पन्न होने वाले प्राणी), पक्षी, पशु और नर आदि की योनियों में जन्म लेता है। तदुपरान्त धर्म-कर्म के आचरण द्वारा नर-तन प्राप्त कर, त्रिदश और मोक्षप्राप्ति के साधनों द्वारा मोक्षी बनता है। हजारों बार अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज— इन चार प्रकार के शरीरों को धारण कर यह मानव-शरीर प्राप्त जीव जब पूर्णरूप से परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

चतुरशीति लक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम् ।
न मानुष्यं विनान्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते ॥१३॥

इस संसार में चौरासी लाख योनियों में पड़ने के बाद भी, मनुष्य योनि में आये बिना, अन्य शरीरों में प्राणी को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

अत्र जन्म सहस्रेषु सहस्रैरपि पार्वति !
कदाचिल्लभते जन्तु र्मानुष्यं पुण्य संचयात् ॥१४॥

हे पार्वती ! यह प्राणी हजारों बार जन्म-मरण की यातनाएँ सहने के बाद ही बड़े पुण्यों के कारण मनुष्य की योनि प्राप्त करता है।

स्वत्वानुभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
यस्तारयति नात्मानं तस्मात् पाप रतोऽत्रकः ॥१५॥

जो प्राणी इस मोक्षदायक दुलभ मनुष्य देह को प्राप्त करने के बाद भी ब्रह्म-चिन्तन के द्वारा अपने आपको आवागमन के बन्धन से मुक्त नहीं करता, उसके समान इस संसार में दूसरा पापी और कौन हो सकता है ?

ततश्चाप्युत्तमं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रिय सौष्ठवम् ।
न वेत्त्यात्महितं यस्तु स भवेद् ब्रह्मघातकः ॥१६॥

जो प्राणी उत्तम मनुष्य जन्म तथा सुन्दर शरीर प्राप्त करके भी अपने भले-बुरे को नहीं पहचानता अर्थात् आवागवन के चक्कर से छुटकारा पाने के लिए ईश्वर-चिन्तन नहीं करता, वह महा पापी (ब्रह्म-घातक) कहलाता है।

विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते ।
तस्माद्देहधनं रक्ष्यं पुण्य कर्माणि साधयेत् ॥१७॥

बिना शरीर के चतुर्वर्ग के फल की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए अवश्य इस शरीर की रक्षा करके अच्छे-अच्छे कार्य करने चाहियें ।

रक्षेत् सर्वात्मनात्मानं आत्मा सर्वस्य भाजनम् ।
रक्षणे यत्नमातिष्ठेद् यावत्तत्त्वं न पश्यति ॥१८॥

हर प्रकार से इस आत्मा (शरीर) की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि आत्मा ही सबका आधार है। जब तक तत्त्व-साक्षात्कार

नहीं होता, तब तक देह-रक्षा के लिए सर्वप्रकारेण प्रयत्नशील रहना चाहिए।

पुन ग्रामाः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुन गृहम्।
पुनः शुभाशुभं कर्म न शरीरं पुनः पुनः ॥१६॥

ग्राम, क्षेत्र, धन, मकान और शुभ-अशुभ कर्म बार-बार मिल सकते हैं, किन्तु यह मानव-शरीर बार-बार नहीं मिलता।

शरीर रक्षणायासः क्रियते सर्वदा जनैः।
नहीच्छन्ति तनुत्यागमपि कुष्ठादि रोगिणः ॥२०॥

इसी से प्रत्येक मनुष्य अपने शरीर की रक्षा के लिए सदा ही प्रयत्नशील रहता है, यहाँ तक कि कोढ़ आदि रोगों से पीड़ित भी अपने शरीर को त्यागना नहीं चाहते।

तद्गोपितं स्याद्यत्नेन धर्मज्ञानार्थ मेव च।
ज्ञानं च ध्यान योगश्च सोऽचिरात्परिमुच्यते ॥२१॥

अतएव धर्म, ज्ञान और ध्यान के निमित्त ही शरीर की यत्नपूर्वक रक्षा करे, क्योंकि इन्हीं से मोक्षसिद्धि सत्वर होती है।

आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्।
कोऽन्यो हितकरस्तस्मादात्मानं तारयिष्यति ॥२२॥

यदि अपने को स्वयं ही बुराइयों से न बचाया जाय तो फिर कौन दूसरा रक्षा के लिए आएगा ?

इहैव नरक व्याधे श्चिकित्सां न करोति यः ।
गत्वा निरौषधं स्थानं व्याधिस्थः किं करिष्यति ? ॥२३॥

जो मनुष्य इस जन्म में ही नरक रूपी व्याधि की चिकित्सा नहीं करता, वह रोगाकुल फिर औषधि-रहित स्थान में जाकर अपनी क्या चिकित्सा कर सकता है ? अर्थात् जन्म, मृत्यु, जरा आदि व्याधियों की चिकित्सा इस मनुष्य-जन्म में ही सुलभ है,—अन्यत्र नहीं।

यावत्तिष्ठति देहोऽयं तावत्तत्त्वं समभ्यसेत् ।
संदीप्ते भवने को वा कूपं खनति दुर्मतिः ॥२४॥

जब तक यह मनुष्य-शरीर विद्यमान है, तभी तक ईश्वर-प्राप्ति के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि मकान में आग लग जाने पर कौन मूर्ख व्यक्ति कुआ खोदता है ? अर्थात् जो कुछ करना हो, इसी जन्म में करे।

व्याघ्रीवास्ते जरा चायुर्याति भिन्न घटाम्बुवत् ।
निघ्नन्ति रिपुवद्रोगा स्तस्माच्छ्रेयः समाचरेत् ॥२५॥

मनुष्य-शरीर को बुढ़ापा सिंहनी के समान आ दबाता है, आयु फूटे घड़े के जल की भांति नष्ट हो जाती है और

जरा, मृत्यु आदि रोग शत्रु की भांति शरीर पर आक्रमण करते हैं, इसलिए (यथाशक्ति) शुभ कार्य करने चाहियें (जिस से कल्याण होवे)।

यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः ।
यावन्नेन्द्रिय वैकल्यं तावच्छ्रेयः समाचरेत् ॥२६॥

जब तक यह शरीर (किसी प्रकार के) दुःख और मुसीबतों से अछूता है और तमाम इन्द्रियां अच्छी प्रकार से कार्य करती हैं, तब तक इस शरीर से आत्म-कल्याण के शुभ कार्य करते रहना चाहिये।

कालो न ज्ञायते नाना कार्यैः संसार संभवैः ।
सुख दुःख रतो जन्तुर्न वेत्ति हितमात्मनः ॥२७॥

मानव विविध जागतिक कार्यों तथा सुख-दुःखों में काल को भूल जाता है और वह सर्वप्रिय आत्मीय हित से भी विमुख होता है, किन्तु काल उसे मार देता है अर्थात् माया में अनुरक्त रहते ही जीव को काल मार डालता है।

यातनार्त्तानापद्गतान् दृष्ट्वाति दुःखितान् मृतान् ।
लोको मोह सुरां पीत्वा न वेत्ति हितमात्मनः ॥२८॥

अनेक प्रकार की यातनाओं से पीड़ित, आपत्तियों में फँसे हुए महा दुखियों और मरे हुए व्यक्तियों को देख कर भी

मनुष्य मोहरूपी सुरा को पीकर आत्म-विस्मृत हो जाता है और उसे अपने भले-बुरे का भी ज्ञान नहीं रहता।

सम्पदः स्वप्न संकाशाः यौवनं कुसुमोपमम् ।
तडिच्चंचलमायुश्च कस्य कस्मादतो धृतिः ।।२९।।

संसार की समस्त सम्पदाएं स्वप्न के समान, यौवन फूल के समान और आयु विद्युत (बिजली) के समान क्षणिक होती है, इसलिए मनुष्य को चाहिए कि इन सब को ध्यान में रख कर ही दैनिक कार्य करे।

शतं जीवितमित्थं च निद्रा स्यादर्द्ध हारिणी ।
बाल्यरोग जरा दुःखैरर्द्धं तदपि निष्फलम् ।।३०।।

मनुष्य की सौ वर्ष की आयु में से आधा भाग तो निद्रा (आदि व्यसनों) के कारण नष्ट हो जाता है और शेष आधा बाल्य, रोग, बीमारी और दुःखों आदि के कारण समाप्त हो जाता है (अतः यह मानव शरीर यों ही गंवा दिया जाता है)।

प्रारब्धव्ये निरुद्योगो जागर्तव्ये सुषुप्तकः ।
विश्वस्तव्यो भय स्थाने घातकैः किं न हन्यते ।।३१।।

किसी प्रारम्भ करने योग्य काम में उद्योग रहित (आलसी), जागने योग्य काम में सोने वाला और भय के स्थान में विश्वास करने वाला मनुष्य भला क्यों न मारा जाय ? (अर्थात् मनुष्य

को ईश्वर-प्राप्ति के लिये सदैव जागरूक और निर्भय होकर तपस्या करनी चाहिए, तभी कल्याण संभव है) ।

तोय फेन समे देहे जीवे शकुनिवत् स्थिते ।
अनित्येऽप्रिय संसारे कथं तिष्ठन्ति निर्भयाः ॥३२॥

जल के झाग (बुदबुदों) के तुल्य इस शरीर में प्राण (जीव) एक पक्षी की भांति स्थित है जो किसी भी समय अवसर पाते ही उड़ सकता है । इस अनित्य (अस्थायी) और अप्रिय संसार में मनुष्य निर्भय कैसे रह सकता है ?

अहिते हितबुद्धिः स्यादध्रुवे ध्रुवचिन्तकः ।
अनर्थे चार्थ विज्ञानी स्व मृत्युं न हि वेत्ति किम ॥३३॥

बुरी वस्तु को भी अच्छी समझने वाला, अनिश्चित् को निश्चित् समझने वाला और अनर्थ को अर्थ समझने वाला व्यक्ति भी क्या अपनी मृत्यु को नहीं जानता ?

पश्यन्नपि न पश्येत् स श्रृवणवन्नपि न बुध्यति ।
पठन्नपि न जानाति तव माया विमोहितः ॥३४॥

(हे देवि !) इस संसार में जन्म लेकर मनुष्य तेरी माया के जाल में पड़कर देखता हुआ भी नहीं देखता, सुनता हुआ भी नहीं समझता और पढ़ता हुआ भी नहीं जानता अर्थात् अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता ।

सन्निमज्जज्जगदिदं गंभीरे काल सागरे ।
मृत्यु रोग महा ग्राहे न किंचिदपि बुध्यति ॥३५॥

मृत्यु और भयंकर रोग रूपी मगरमच्छों से युक्त गंभीर काल रूपी सागर में इस सारे संसार को डूबते देखकर भी यह मानव कुछ नहीं समझ पाता ।

प्रतिक्षणमयं कायो जीर्यमाणो निरीक्ष्यते ।
आमकुंभ इवाम्भःस्थो विशीर्ण इव भाव्यते ॥३६॥

यह शरीर प्रति क्षण (हर समय लगातार) नष्ट होता जाता है और जल में रक्खे हुए मिट्टी के कच्चे घड़े के समान (धीरे-धीरे) नष्ट होता जाता है।

युज्यते वेष्टनं वायो राकाशस्य च खण्डनम् ।
ग्रन्थनं च तरंगाणामास्था नायुषि युज्यते ॥३७॥

वायु का बाँधा जाना, आकाश के टुकड़े किया जाना और तरंगों (लहरों) का हार पिरोया जाना संभव हो सकता है,—परन्तु आयु के चिर-स्थायित्व पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

पृथ्वी दह्यते येन मेरुश्चपि विशीर्यते ।
शुष्यते सागर जलं शरीरे देवि ! का कथा ॥३८॥

हे देवि ! जो इस पृथ्वी को जला सकता है तथा मेरु पर्वत

को टुकड़े कर सकता है और (अथाह) समुद्र जल को सुखा (कर उड़ा) सकता है (उस भगवान् के आगे) इस शरीर की चर्चा ही क्या है ?

अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे।
जल्पन्तमिति मर्त्यं हि हन्ति कालवृकोदरः ॥३९॥

'यह मेरी सन्तान है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा धन है और ये मेरे भाई-बन्धु (रिश्तेदार) हैं'—पुकारते हुए इस मनुष्य को काल रूपी भेड़िया समाप्त कर देता है।

इदं कृतमिदं कार्य मिदमन्यत कृताकृतम् ।
एवमीहा समायुक्तं मृत्यु रति जनं प्रिये ! ॥४०॥

हे देवि !—'मैंने यह किया है और अभी वह करना बाकी है'—इस प्रकार के संकल्प-विकल्प में उलझे हुए मनुष्य को मृत्यु हड़प कर जाती है।

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्निकम।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाप्यथवाऽकृतम् ॥४१॥

जो कल करना है, उसे आज कर लो, जो मध्याह्न में करना है, उसे पूर्वाह्ण (प्रातःकाल) में ही कर लेना चाहिए, क्योंकि मृत्यु किसी के किए और न किए (अर्थात् करने योग्य शेष रहे कार्य) की प्रतीक्षा नहीं करती । अर्थात् जो कुछ भी आत्म-कल्याण के लिए करना है, उसे जितना शीघ्र संभव हो, कर लेना चाहिए।

जरा-दर्शित-पन्थानं प्रचण्ड-व्याधि-सैनिकम ।
मृत्यु शत्रु समादिष्ट मायान्तं किं न पश्यसि ? ।।४२।।

क्या तुम बुढ़ापे द्वारा मार्ग दिखाए हुए और यमराज द्वारा आदिष्ट (आज्ञा दिए हुए) प्रचण्ड (घोर) व्याधि रूपी सैनिक को आते हुए नहीं देख रहे हो ?

कृष्ण सूची विनिर्भिन्नं मिश्रं विषय-सर्पिषा ।
रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम ।।४३।।

काल रूपी सुई से बिंधे हुए तथा विषय-वासना रूपी घी से लिपटे हुए और राग-द्वेष रूपी अग्नि में पके हुए मनुष्य को मृत्यु अपना ग्रास बना लेती है ।

बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि ।
सर्वानादिशते मृत्यु रेवं भूतमिदं जगत् ।।४४।।

यह संसार ऐसा (असार) है कि इस में बाल, युवक, वृद्ध और गर्भस्थ प्राणियों को भी मृत्यु अपना आहार बना लेती है ।

ब्रह्मा विष्णु महेशादि देवता भूत जातयः ।
नाशमेवानुधावन्ति तस्माच्छ्रेयः समाचरेत् ।।४५।।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश और समस्त प्राणीमात्र नाश की ओर दौड़ते हैं,—इसलिए (मनुष्य को) अपने कल्याण के लिए कार्य करने चाहिएं ।

स्व स्व वर्णाश्रमाचार लंघनाद्दुष्प्रतिग्रहात् ।
परस्त्री धनलोभाच्च नृणामायुः क्षयोभवेत् ॥४६॥

अपने-अपने वर्णाश्रम और आचार-व्यवहार का उल्लंघन करने से, दुष्प्रतिग्रह से, पर-स्त्री और पर-धन के लोभ से मनुष्यों की आयु नष्ट होती जाती है।

वेद शास्त्राद्यनभ्यासात् तथैव गुर्वनर्च्चनात् ।
नृणामायुः क्षयो भूयात् इन्द्रियाणामनिग्रहात् ॥४७॥

वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय तथा गुरुजनों का सम्मान न करने से और इन्द्रियों पर संयम न रखने से मनुष्यों की आयु नष्ट होती है।

व्याधिराधिर्विषं शास्त्रं ना सर्पः पशवोमृगाः ।
निर्वाणं येन निर्दिष्टं तेन गच्छन्ति जन्तवः ॥४८॥

व्याधि (रोग), आधि (मानसिक व्यथा), विष (जहर), शास्त्र, मनुष्य, सर्प, पशु और मृग आदि सभी जन्तु निर्वाण को प्राप्त करते हैं अर्थात् सबको एक न एक दिन कथावशेष हो जाना है।

जीवस्तृण जलौकैव देहाद्देहान्तरं व्रजेत् ।
संप्राप्य परमंशेन देहं त्यजति पूर्वजम् ॥४९॥

जिस प्रकार घास का एक तिनका समुद्र में पड़ कर थपेड़े

खाता हुआ कहीं का कहीं पहुँच जाता है, उसी प्रकार यह जीव भी एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करता रहता है और परमंश (ब्रह्म) को प्राप्त कर इस शरीर का परित्याग करता है।

बाल्य यौवन वृद्धत्वं यथा देहान्तरादिकम् ।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्गृहाद्गृहमिवागतिः ॥५०॥

जिस प्रकार कोई व्यक्ति एक घर से दूसरे घर जाता है, उसी प्रकार यह जीव भी नाना प्रकार के शरीरों को धारण करता रहता है और बाल्यावस्था, यौवन एवं वृद्धत्व,—इन तीनों प्रकार की अवस्थाओं का उपभोग करता रहता है।

जनाः कृत्वेह कर्माणि सुख दुःखानि भुञ्जते ।
परत्र हानितो देवि ! यान्त्यायान्ति पुनः पुनः ॥५१॥

हे देवि ! इस संसार में मानव नाना प्रकार के कर्म करके सुख और दुःख भोगते रहते हैं और लोक तथा परलोक में बार-बार आते-जाते अर्थात् जन्मते-मरते रहते हैं।

इह यत् क्रियते कर्म तत् परत्रोपभुञ्जते ।
सिक्त मूलस्य वृक्षस्य फलं शाखासु दृश्यते ॥५२॥

इस लोक में जैसा भी अच्छा या बुरा कर्म मनुष्य करता है, उसका फल दूसरे जन्म में भोगता है, क्योंकि जिस वृक्ष की जड़ों को पानी डालकर सींचा जाता है, उसी की शाखाओं पर फल लगे दिखाई पड़ते हैं।

दारिद्र्य दुःख रोगाश्च बंधनं व्यसनानि च ।
आत्मापराध वृक्षस्त्र फलान्येतानि देहिनाम् ॥५३॥

दरिद्रता, दुःख, नाना प्रकार के रोग, (जन्म-मरण रूपी) बन्धन और नाना प्रकार के व्यसन,—ये सब प्राणियों के स्वयं अपने द्वारा किए हुए अपराध रूपी वृक्ष के फल हैं।

निःसंग एव मोक्षः स्याद् दोषाः सर्वे च संगजाः ।
संगाच्चलते ज्ञानी चावश्यं किमुताल्पवित ॥५४॥

इस संसार से अलगाव रखने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। अधिक लगाव से ही सब प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं और ज्ञानी लोग भी अपने लक्ष्य से विचलित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में स्वल्प बुद्धि वाले व्यक्तियों का तो कहना ही क्या है? अर्थात् इस संसार के नाते-रिश्तों के माया-जाल में फँसकर ज्ञानी-ध्यानी भी अपने कर्त्तव्य को भूल जाते हैं,—इसलिए जहाँ तक हो चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए।

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः सचेत् त्युक्तं न शक्यते ।
सद्भिः सह च कर्तव्यः सतां संगो हि भेषजम् ॥५५॥

इस संसार में अधिक मेल-मिलाप के मायाजाल में नहीं फँसना चाहिए। यदि मेल-मिलाप करना ही आवश्यक हो तो सज्जनों के साथ करना चाहिए, क्योंकि सज्जनों का संग एक

प्रकार की औषधि है (जिस से जन्म-मरण के रोग से निवृत्ति हो जाती है)।

सत्सङ्गश्च विवेकश्च निश्चलं नयनद्वयम् ।
यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः ॥५६॥

सत्संग और विवेक,—ये मनुष्य के दो निश्चल नयन हैं। जिसके ये नयन नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। (ऐसी अवस्था में) वह (सत्संग और विवेक रूपी नयनों से हीन मनुष्य) क्यों न कुमार्गगामी बने ?

यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥
स्वदेहमपि जीवोऽयं त्यक्त्वा याति सुरेश्वरि ॥५७॥

हे देवि ! इस संसार में आकर यह प्राणी जितने अपने प्यारे (रिश्ते-नाते) सम्बन्ध बनाता है, उतनी ही उसके हृदय में शोक रूपी कीलें ठोकी जाती हैं, क्योंकि यह जीव तो अन्त में अपने शरीर को भी छोड़ कर चला जाता है।

स्त्री मातृ पितृ पुत्रादि सम्बन्धः केन हेतुना ?
दुःखमूलो हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः ॥
तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः प्रिये ! ॥५८॥

हे देवि ! स्त्री, माता, पिता और पुत्रादि का सम्बन्ध किस लिए किया जाए ? (अर्थात् अन्त समय पर इन में से कोई भी

काम नहीं आता)। यह संसार समस्त दुःखों का मूल है। जो इस संसार में है, वह हर प्रकार से दुःखी है। जिसने इस संसार का परित्याग किया है, वही सुखी है, दूसरा कोई नहीं।

प्रभवं सर्वदुःखानामाश्रयः सकलापदाम् ।
आलयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् प्रिये ! ॥५९॥

हे प्रिये ! सब प्रकार के दुःखों के उत्पादक तथा सब प्रकार की विपत्तियों के आधार और सब प्रकार के पापों के घर-रूपी इस संसार को छोड़ देना चाहिए (जिससे परम पद की प्राप्ति हो)।

अबन्ध बन्धनं घोरं मिश्रीकृतं महाविषम् ।
अशस्त्र खण्डनं देवि ! संसारासक्त चेतसाम ॥६०॥

हे देवि ! जिन लोगों का मन इस संसार में लगा हुआ है, उनके लिए यह संसार घोर बन्धन, मीठा विष एवं बिना शस्त्र के संहार करने वाला है।

आदि मध्यावसानेषु सर्वंदुःखमिदं जगत् ।
तस्मात्संतज्य संसारं तत्त्वनिष्ठः सुखी भवेत् ॥६१॥

यह संसार प्रारम्भ, मध्य और अन्त,—तीनों ही अवस्थाओं में दुःखों से भरपूर है, इसलिए इस संसार को त्यागकर ब्रह्म-चिन्तन करने वाला व्यक्ति ही सुखी है।

लोह दारूमयैः पाशैः दृढ़बन्धोऽपि मुच्यते।
स्त्री धनादिषु संसक्तो मुच्यते न कदाचन ॥६२॥

लोहे और लकड़ी के भयंकर पाश (जाल) में फंसे हुए व्यक्ति का छुटकारा पाना संभव है, किन्तु स्त्री (पुत्र) धन आदि के सांसारिक बन्धनों में बन्धे हुए व्यक्ति का छुटकारा पाना कदापि संभव नहीं।

कुटुम्ब चिन्ता युक्तस्य श्रुत शीलादयो गुणाः।
अपक्व कुम्भ जलवन्नश्यन्त्यंगेन तेन हि ॥६३॥

जिस प्रकार कच्चे (मिट्टी के) घड़े में जल भरने से वह जल घड़े के (गल जाने के कारण) साथ ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार दिन-रात अपने कुटुम्ब के पालन-पोषण की चिन्ता में लगे हुए व्यक्ति के श्रुत, शील आदि गुण नष्ट हो जाते हैं। (इसलिए कुटुम्ब-पालन के साथ-साथ आत्म-कल्याण के हितार्थ प्रभु-चिन्तन भी करना चाहिए)।

वांछिता शेष चित्तैस्तैर्नित्य लोको विनाशितः।
हा हन्त! विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रिय तस्करैः ॥६४॥

हाय अफ़सोस! शरीर में निवास करने वाले ये इन्द्रिय रूपी चोर,—जिनका आहार विषय-वासना है और जिनकी कभी भी तृप्ति नहीं होती,—इस मानव को दिन-रात नष्ट करते रहते हैं।

मांस लुब्धो यथा मत्स्यो लौह शंकुं न पश्यति ।
सुख लुब्ध स्तथा देही माया शीलं न पश्यति ।।६५।।

जिस प्रकार मांस के टुकड़े की लालची मछली (शिकारी द्वारा प्रयोग किये गये) लोहे के कांटे को नहीं देखती (और लालच के कारण मांस के टुकड़े को निगल कर कांटे में फंस जाती है), उसी प्रकार सुख का लोभी यह मनुष्य भी इस संसार के मिथ्या प्रपञ्चों को नहीं समझ पाता और (क्षणिक सुख के) लोभ में पड़कर अपने लक्ष्य (परब्रह्म की प्राप्ति) को भूलकर जीवन को नष्ट कर डालता है।

हिताहितं न जानन्ति नित्यमुन्मार्ग गामिनः ।
कुक्षिपूरण निष्ठा ये तेऽबुधा नारकाः प्रिये ! ।।६६।।

हे देवि ! जो रात-दिन कुमार्ग का अनुसरण करते हैं और अपने भले-बुरे को भी नहीं पहचानते, वे व्यक्ति मूर्ख हैं और उन्हें केवल अपने पेट भरने की ही चिन्ता रहती है। ऐसे ही व्यक्ति नरक भोगते हैं।

निद्रादि मैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः ।
ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो, ज्ञानहीनः पशुः प्रिये ! ।।६७।।

हे देवि ! निद्रा, मैथुन और आहार आदि क्रियाएं सभी प्राणी समान रूप से करते हैं। जिसको अच्छे और बुरे का ज्ञान है, वही मनुष्य है और ज्ञान-हीन पशु है।

प्रभाते मल मूत्राभ्यां क्षुत्तृडभ्यां मध्यगे रवौ ।
रात्रौ मदन निद्राभ्यां बाध्यन्ते मानवाः प्रिये ! ॥६८॥

हे देवि ! इस संसार में मनुष्यों को प्रातःकाल मल-मूत्र, मध्यान्ह में भूख-प्यास और रात्रि में काम-क्रीड़ा, निद्रा आदि क्रियाओं ने बांधा हुआ है । (अर्थात् मनुष्य इन क्रिया-कलापों में फँसा हुआ परब्रह्म परमेश्वर को भूल जाता है) ।

स्वदेह धर्म दारादि-निरताः सर्वजन्तवः ।
जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञान मोहिताः ॥६९॥

हा अफसोस ! इस संसार में आकर मनुष्य अपने शरीर, धर्म, (पुत्र) कलत्रादि के पालन-पोषण में उलझे रहते हैं और बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं । (अज्ञान से मोहित रहने के कारण उनको इस आवागमन से छुटकारा नहीं मिलता) ।

स्व स्व वर्णाश्रमाचार निरताः सर्व मानवाः ।
न जानन्ति परं तत्त्वं मूढ़ा नश्यन्ति पार्वति ! ॥७०॥

हे पार्वती ! (इस संसार में) सभी मनुष्य अपने वर्ण, आश्रम और आचार-विचार के चक्कर में फंसे रहते हैं और पर ब्रह्म परमेश्वर को नहीं जान पाते । इस अज्ञान के कारण ही वे नष्ट हो जाते हैं ।

क्रियायासपराः केचिद् व्रत धर्मादि संयुताः ।
अज्ञान संभृतात्मानः संचरन्ति प्रतारकाः ॥७१॥

इस संसार में कुछ ऐसे आत्मवञ्चक भी हैं जो कुछ यौगिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त कर और व्रत, धर्म आदि का अनुष्ठान कर के अज्ञान (अहंकार) के ही भार से लदे फिरते रहते हैं।

नाम मात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरताः नराः ।
मन्त्रोच्चारण होमाद्यै र्भ्रमिताः क्रतु विस्तरैः ॥७२॥
एक भक्तोपवासाद्यै र्नियमैः काय शोषणैः ।
मूढ़ामोक्ष मिच्छन्ति तव माया विमोहिताः ॥७३॥

और, हे देवि ! तेरी माया से विमोहित कुछ अज्ञानी लोग थोड़ी देर के लिए अपने मन को खुश करने के लिए कर्मकाण्ड में लगे रहते हैं और मन्त्र-जप, हवन, याज्ञिक क्रियाओं, एक भक्ति, उपवास आदि नियमों से अपने शरीर को सुखाकर ही मोक्ष की कामना करते रहते हैं (परन्तु वास्तव में उनको मोक्ष नहीं मिलता)।

देहदण्डन मात्रेण का सिद्धि रविवेकिनाम् ।
वल्मीक ताड़नाद्देवि ! मृतः कोऽत्र महोरगः ॥७४॥

हे देवि ! शरीर को (इस प्रकार) कष्ट देने से अविवेकी व्यक्तियों को कोई सिद्धि नहीं होती, जैसे कि बाँबी (सांप के बिल) को (लाठी से) पीटने पर कभी सांप नहीं मरा करता।

धनार्जनोपयुक्तास्ते दाम्भिकावेशधारिणः ।
भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लुब्धा भ्रामयन्ति जनानपि ॥७५॥

इस प्रकार के छद्म वेषधारी लोग अपने को ज्ञानी समझते हुए, धन कमाते हुए, विचरते रहते हैं और अन्य व्यक्तियों को भी भ्रम में डालते रहते हैं।

सांसारिक सुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीतिवादिनम् ।
कर्म ब्रह्मोभय भ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥७६॥

सांसारिक सुखों में लीन, अपने को ब्रह्मज्ञ कहने वाले, कर्म और ब्रह्म दोनों से भ्रष्ट मनुष्य को अन्त्यज (अछूत) की भांति त्याग देना चाहिए।

गृहारण्यसमा लोके गत व्रीड़ा दिगम्बराः ।
चरन्ति गर्दभाद्याश्च विविक्तास्ते भवन्ति किम् ? ॥७७॥

गर्दभ आदि अनेकों जानवर घर में और जंगल में निर्लज्ज होकर नंगे घूमते रहते हैं। पर क्या इससे उनको ब्रह्म का ज्ञान होता है ? (अर्थात् नहीं)।

आजन्म मरणान्तं च गंगादि तटिनी स्थिताः ।
मातंग मत्स्य प्रमुखा व्रतिनस्ते भवन्ति किम् ? ॥७८॥

हाथी और मछली आदि जानवर मरण पर्यन्त जन्मभर गंगा आदि (पवित्र) नदियों के किनारे पर निवास करते हैं, क्या वे व्रती होते हैं ?

वदन्ति हृदयानन्दं पठन्ति शुक सारिकाः ।
तत्रैव पुरतो देवि ! विबुधाः किं भवन्ति हि ? ।।७९।।

और, हे देवि ! इस लोक में तोते और मैना (आदि जानवर) बहुत हृदयाल्हादकारी (मीठे) वचन बोलते हैं, पर इससे क्या वे विवेकी हो जाते हैं ?

तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः ।
हरिणादिमृगा देवि ! तापसास्ते भवन्ति किम् ? ।।८०।।

हे देवि ! हिरन आदि जानवर सदा जंगलों में निवास करते हैं और घास के तिनके तथा पत्ते खाकर निर्वाह करते हैं, पर ऐसा करने से क्या वे तपस्वी हो जाते हैं ?

पारावताः शिलाहाराः परमेश्वरि ! चातकाः ।
न पिबन्ति मही तोयं योगिनस्ते भवन्ति किम् ? ।।८१।।

हे देवि ! कंकड़-पत्थरों को चुग-चुग कर खाने वाले कबूतर और पृथ्वी पर पड़े जल को न पीने वाले चातक क्या (वास्तव में) योगी होते हैं ?

शीत वातातपसहा जम्बालश्मशयाः प्रिये !
तिष्ठन्ति शूकराद्याश्च योगिनस्ते भवंति किम् ।।८२।।

हे देवि ! जंगल में गीदड़, शेर और सूअर आदि जानवर निरन्तर सर्दी, वायु और धूप को सहते रहते हैं,—पर क्या वे योगी बन जाते हैं ?

तस्मादित्यादिकं कर्म लोकरञ्जन कारणम् ।
मोक्षस्य कारणं साक्षात् तत्त्वज्ञानं कुलेश्वरि ! ॥८३॥

इसलिए, हे कुलेश्वरी ! उपरोक्त सब क्रिया-कर्म तो केवल सांसारिक सन्तोष के ही लिए हैं। मोक्ष का कारण तो साक्षात् तत्वज्ञान ही है।

षडदर्शन महाकूपे पतिताः पशवः प्रिये !
परमार्थं न जानन्ति पशुपाश-नियन्त्रिताः ॥८४॥

हे देवि ! षड्दर्शन के महाकूप (विशाल कुएं) में गिरे हुए यह पशु परमार्थ को नहीं जानते, क्योंकि उनके ऊपर माया के जाल का नियन्त्रण रहता है।

वेदार्थमपरिज्ञाय दह्यमाना इतस्ततः ।
कालोर्मिणा ग्रहग्रस्ता स्तिष्ठंति हि कुतार्किकाः ॥८५॥

वेदों के अर्थ को न जानने के कारण कुतार्किक लोग काल रूपी तरङ्गों में, कुग्रह से ग्रस्त की भांति, इधर-उधर भटकते हैं।

वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति च ।
विडम्बकस्य तस्यापि सत्सर्वं काक भाषितम् ॥८६॥

जो वेद, शास्त्र और पुराणों का ज्ञान रखते हुए भी परमार्थ को नहीं जानता, उस मायाग्रस्त के लिये यदि कोई परमार्थ की बात कही जाए, तो वह काकभाषित (के तुल्य) है।

'इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं' इति चिंता समाकुलाः ।
पठन्त्यहर्निशं देवि ! परतत्त्वपरांमुखाः ॥८७॥

हे देवि ! परतत्व को न जानने वाले व्यक्ति.—"यह ज्ञान है और यह ज्ञेय है"—दिन-रात इसी विवाद में उलझे हुए चिन्ता में घुलते रहते हैं।

काव्यच्छंदो निबंधेन काव्यालंकार शोभिताः ।
चिंतयादुःखितामूढ़ा स्तिष्ठंति व्याकुलेन्द्रियाः ॥८८॥

काव्य, छन्द, निबन्ध और अलंकारों की गुत्थियां सुलझाने में लगे हुए मूढ़ लोग चिन्ता से दुःखी एवं इन्द्रियों से व्याकुल रहते हैं।

अन्यथा परमं तत्त्वं जनाः क्लिश्यंति चान्यथा ।
अन्यथाशास्त्र सद्भावं व्याख्यां कुर्वंति चान्यथा ॥८९॥

इस प्रकार परमतत्त्व को न जानने के कारण लोग क्लेश भोगते रहते हैं और शास्त्रों के सद्भावों की गलत व्याख्या करते रहते हैं।

कथयन्त्युन्मनी भावं स्वयं नानुभवन्ति हि ।
अहङ्कारहताः केचित् उपदेश विवर्जिताः ॥९०॥

बहुत से अहंकारी लोग गुरुजनों से उपदेश और स्वयं उन्मनी अवस्था का अनुभव प्राप्त किये बिना ही बकवास करते रहते हैं।

पठन्ति वेद शास्त्राणि दुर्लभा भववेदकाः ।
न जानन्ति परं तत्त्वं दर्वी पाक रसं यथा ।।९१।।

इस संसार में लोग वेद-शास्त्र पढ़ते तो हैं, पर संसार की वास्तविकता का ज्ञान रखने वाले बहुत दुर्लभ हैं और वे भी परम तत्त्व को नहीं जानते। उनकी दशा ठीक कड़छी के समान है जो स्वयं पाक के रस के ज्ञान से शून्य रहती है।

शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका ।
पठन्ति वेदशास्त्राणि विवदन्ति परस्परम् ।।९२।।

जैसे मनुष्य के शिर पर लदे हुए पुष्पों की सुगन्धि को नासिका ही ग्रहण करती है, शिर नहीं करता, ठीक ऐसी ही दशा उन व्यक्तियों की है जो वेद-शास्त्र पढ़ने के बाद उनका मनन न करते हुए परस्पर में वाद-विवाद में ही रत रहते हैं।

तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति ।
गोपः कक्षगतं छागं कूपे पश्यति दुर्मतिः ।।९३।।

जिस प्रकार प्यासा ग्वाला अपनी बगल में टंगी हुई छागल (पानी के बर्तन) को न जानता हुआ पानी के लिए कुएं की ओर ताकता है, उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति अपने ही में स्थित तत्व को न जानकर व्यर्थ ही शास्त्रों के मोह-बन्धन में उलझ जाता है।

संसार मात्र नाशाय शाब्द बोधो न हि क्षमः ।
न निवर्त्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपशिखया ।।९४।।

संसार (आवागमन) के नाश के लिये शाब्दिक ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही कार्य नहीं चलता। जैसे कि दीप-वर्तिका मात्र से ही अन्धकार का नाश नहीं होता, अपितु उसके लिए अग्नि, तैल आदि वस्तुओं की भी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आत्मकल्याण के लिए भी आत्मज्ञान की परमावश्यकता है।

प्रज्ञाहीनस्य पठनो ह्यन्धस्यादर्शनं यथा ।
देवि ! प्रज्ञावतःशास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य कारणम् ।।९५।।

हे देवि ! जिस प्रकार बुद्धिहीन व्यक्ति पढ़ सकता है और अन्धा व्यक्ति आंखों के न होने से न देखता हुआ भी देखता है (अर्थात् अन्तर्ज्योति से सब कुछ देख सकता है), उसी प्रकार वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से बुद्धिमान व्यक्ति तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं।

अग्रतः पृष्ठतः केचित् पार्श्वयोरपि केचन ।
तत्त्वमीदृक् तादृगिति विवदन्ति परस्परम् ।
सद् विद्यादान सूराद्यैगुर्णैर्विख्यात मानवाः ।।९६।।

सत् विद्या, दान आदि गुणों से विख्यात कुछ व्यक्ति आगे, पीछे और इधर-उधर की बातों में परस्पर "तत्त्व ऐसा है, वैसा है" कहते हुए झगड़ते रहते हैं।

ईदृश स्तादृशश्चेति दूरस्थः कथ्यते जनैः ।

प्रत्यक्ष ग्रहणं नास्ति वार्ताया ग्रहणं प्रिये !

एवं ये शास्त्र संमूढ़ा स्ते दूरस्था न संशयः ॥६७॥

हे देवि ! इस प्रकार ये लोग तत्त्वज्ञान को ऐसा है, वैसा है, दूर है आदि कहते रहते हैं और उसकी प्रत्यक्ष में अनुभूति नहीं कर पाते। जो लोग केवल शास्त्रों के मोहजाल में ही फँसे रहते हैं, वे निस्सन्देह तत्त्वज्ञान से बहुत दूर रहते हैं।

इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वतः श्रोतुमिच्छति ।

देवि वर्ष सहस्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति ॥९८॥

हे देवि ! जो व्यक्ति 'यह ज्ञान है, यह ज्ञेय है' आदि ही सर्वत्र सुनने की इच्छा रखता है, वह हज़ार वर्ष की आयु प्राप्त कर के भी शास्त्रों के अन्त को नहीं प्राप्त कर सकता।

वेदाद्यनेक शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्न कोटयः ।

तस्मात् सारं विजानीयात् क्षीरं हंस इवाम्भसि ॥९९॥

वेद आदि शास्त्र अनेक हैं, पर मनुष्य की आयु स्वल्प है और करोड़ों विघ्न-बाधाएं हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि शास्त्रों का सार ग्रहण करे, जिस प्रकार हंस जल में मिश्रित दूध को ही ग्रहण करता है।

अभ्यस्य सर्व शास्त्राणि तत्वं ज्ञात्वा हि बुद्धिमान् ।

पलालमिव धान्यार्थी सर्व शास्त्रं परित्यजेत् ॥१००॥

बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह सब शास्त्रों के (अध्ययन) अभ्यास द्वारा परब्रह्म परम तत्व का ज्ञान प्राप्त कर के, जैसे किसान अन्न को निकालकर भूसे को छोड़ देता है, उसी प्रकार सब शास्त्रों का परित्याग कर दे।

यथामृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम् ।
तत्त्वज्ञस्य तथा देवि ! न शास्त्रेण प्रयोजनम् ॥१०१॥

हे देवि ! जिस प्रकार अमृत पीकर तृप्त हुए व्यक्ति को भोजन से प्रयोजन नहीं रह जाता, उसी प्रकार तत्त्व-ज्ञाता को शास्त्रों से भी कोई प्रयोजन नहीं रहता।

न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्र पठनादपि ।
ज्ञानादेव हि मुक्तिःस्यान्नान्यथा वीर वन्दिते ॥१०२॥

हे वीर वन्दनीया ! केवल वेदों के अध्ययन और शास्त्रों के पढ़ने से ही मुक्ति नहीं होती, अपितु ज्ञान-प्राप्ति से ही होती है।

न वेदाः कारणं मुक्तेर्दर्शनानि न कारणम् ।
तथैव सर्वशास्त्राणि ज्ञानमेव हि कारणम् ॥१०३॥

वेद, दर्शन और सब शास्त्र मुक्ति का कारण नहीं हैं, अपितु मुक्ति तो ज्ञान से ही होती है।

मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः सर्वा विडम्बकाः ।
काष्ठभार श्रमादस्मादेकं संजीवनं परम् ॥१०४॥

समस्त विद्याएं केवल विडम्बना मात्र हैं, एकमात्र गुरु-उपदेश ही मुक्ति-दाता है। विद्याएं तो लकड़ियों के भार के समान हैं। उनसे श्रान्त व्यक्ति के लिए गुरु-वाणी ही संजीवनी स्वरूप है।

अद्वैतन्तु शिवेनोक्तं क्रियायास विवर्जितम् ।
गुरुवक्त्रेण लभ्येत नाधीतागम कोटिभिः ॥१०५॥

भगवान शिव के मुखारविन्द से प्रतिपादित अद्वैत ज्ञान के लिये क्रियाओं का व्यर्थ परिश्रम आवश्यक नहीं है, वह तो गुरुदेव के उपदेश से ही प्राप्त हो सकता है, करोड़ों वेद-शास्त्रों के अध्ययन से नहीं।

आगमोत्थं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते ।
शब्द ब्रह्मागममयं परब्रह्म विवेकज ॥१०६॥

संसार में आगमोत्थ तथा विवेकोत्थ दो प्रकार का ज्ञान कहा जाता है। आगम (शास्त्रों) द्वारा प्राप्त ज्ञान 'शब्द ब्रह्म' और विवेक द्वारा प्राप्त ज्ञान 'पर ब्रह्म' कहा जाता है।

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैत मिच्छन्ति चापरे ।
मम तत्त्वं विजानन्तो द्वैताद्वैत विवर्जितम् ॥१०७॥

कुछ व्यक्ति अद्वैत ज्ञान और कुछ द्वैत ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु तत्वतः 'मम' को जानने वाले द्वैत-अद्वैत दोनों का ही परित्याग करते हैं।

द्वे पदे बन्ध मोक्षाय ममेति निर्ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति विमुच्यते ॥१०८॥

संसार में 'मम' (अहंभाव) और 'निर्मम' (अहंभाव-शून्य) ये दो ही बन्धन और मोक्ष के कारण हैं। मम भाव से ग्रस्त व्यक्ति बन्धन में फंस जाता है और निर्मम सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

तत् कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ॥१०९॥

कर्म वही (श्रेष्ठ) है जो मनुष्य के लिए बन्धन का कारण न हो और विद्या वही (श्रेष्ठ) है जिस से मनुष्य आवागमन से मुक्ति पा सके। अन्य अनेकों काम तो करने भर के लिए तथा अन्य विद्यायें केवल निपुणता मात्र के लिए ही हैं।

यावत् कामादि दीप्येत यावत संसार वासना।
यावदिन्द्रियचापल्यं तावत तत्त्वकथा कुतः ॥११०॥

जब तक शरीर में इच्छाएं (संकल्प-विकल्प) हैं, संसार भोगने की इच्छा बनी है, इन्द्रियों की चञ्चलता विद्यमान है, तब तक परम तत्त्व की चर्चा कहाँ? अर्थात् सांसारिक कार्यों से उपरामता और इन्द्रिय-निग्रह के बिना परब्रह्म की प्राप्ति कठिन और असंभव है।

यावत् प्रयत्न रोगोस्ति यावत् संकल्प कल्पना।
यावन्न मनसः स्थैर्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥१११॥

जब तक किसी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने का रोग (आपके मन में) विद्यमान है और संकल्प-विकल्प का क्रम जारी है एवं मन की पूर्ण रूप से निश्चलता नहीं है, तब तक परम तत्त्व की प्राप्ति भी संभव नहीं है।

यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदस्ति हि।
यावन्न गुरु कारुण्यं तावत्तत्त्व कथा कुतः ॥११२॥

जब तक अपने शरीर का अभिमान तथा मोह-ममता विद्यमान है और गुरु महाराज की पूर्ण रूप से अनुकम्पा नहीं हो जाती, तब तक परम तत्त्व की प्राप्ति संभव कहाँ ?

यावत्तपो व्रतं तीर्थं जप होमार्चनादिकम्।
वेद शास्त्रागम कथा तावत्तत्त्व कथा कुतः ॥११३॥

जब तक तप, व्रत, तीर्थाटन, जप, होम, पूजा-पाठ का क्रम और वेद-शास्त्रों का अध्ययन, श्रवण ही प्रधान है, तब तक तत्त्वप्राप्ति संभव नहीं।

तस्मात् सर्व प्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा।
तत्त्वनिष्ठो भवेद् देवि ! यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ॥११४॥

इसलिए, हे देवि ! यदि मनुष्य आत्म-सिद्धि करना चाहता है तो उसे पूरे यत्न के साथ प्रत्येक अवस्था में तत्त्वनिष्ठ होना चाहिए (तभी उस को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो सकती है)।

धर्मज्ञान स्व पुष्पस्य स्वकुलोक्त फलस्य च।
तापत्रयार्ति संतप्त श्छायां कल्पतरोः श्रयेत् ।।११५।।

इसलिए इस संसार में तापत्रय से संतप्त व्यक्ति को स्वधर्म-ज्ञान रूपी पुष्प एवं स्वकुलोक्त फल युक्त कल्पतरु की छाया का आश्रय प्राप्त करना चाहिए।

बहुनाऽत्र किमुक्तेन रहस्यं शृणु पार्वति !
कुलधर्मसृते मुक्ति र्नास्ति सत्यं न संशयः ।।११६।।

हे पार्वती ! अधिक कहने से क्या लाभ है ? रहस्य की बात सुनो। कुल-धर्म (तत्त्वज्ञान के लिए शक्तिजागरण) के बिना मनुष्य की मुक्ति नहीं होती, यह निस्संदेह सत्य मानो।

तस्माद्वदामि तत्त्वं ते विज्ञायात्र गुरोर्मुखात्।
सुखेन मुच्यते देवि ! घोर संसार बन्धनात् ।।११७।।

इसलिए मैं तुम्हें तत्त्वज्ञान बताता हूँ, जिसे श्री गुरु-मुख से जानकर मनुष्य संसार के घोर बन्धनों से सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है।



—: मुद्रक :—
श्री देवेन्द्र विज्ञानी,
विज्ञान प्रैस, ऋषिकेश।